मुखौटा-कला : एक सांस्कृतिक अध्ययन

आदित्य कुमार मिश्रा

पूर्वोत्तर भारत के असम राज्य में स्थित माजुली दुनिया का सबसे बड़ा नदी द्वीप माना जाता है। यह द्वीप उत्तर में सुबनसिरी नदी और दक्षिण में ब्रह्मपुत्र नदी के दोआब पर स्थित है। माजुली को असम की सांस्कृतिक राजधानी भी कहा जाता है। असम में प्रचलित विविध कलारूपों का मूल उत्स माजुली ही है। असम में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (1449-1568 ई.) ने नव-वैष्णव भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। भक्ति क्षेत्र में स्थिरता और एकसूत्रता लाने के लिए उन्होंने 'एक शरण नाम धर्म' का प्रवर्तन किया जिसके फलस्वरूप उन्होंने भक्तिक्षेत्र में बहुदेववाद के स्थान पर एक परम पुरुष श्रीकृष्ण को ही आराध्य के रूप में स्वीकृति दी। इस संबंध में असमिया साहित्य के मूर्धन्य विद्वान महेश्वर नेओग ने अपनी पुस्तक 'शंकरदेव एंड हिज टाइम्स' में कहा है, The new vaishnava movement of assam is associated with the person- ality of sankardeva(1449-1568A -D-)-The doctrine of bhakti or love is traced back to great antiquity and is to be connected with early visnuism."[1]

श्रीमंत शंकरदेव का व्यक्तित्व बहुआयामी था, उन्होंने अपने नव वैष्णव मत के प्रचार-प्रसार हेतु असम में अनेक सत्रों की स्थापना की। ये सत्र अध्ययन- अध्यापन के साथ ही विविध लोक कलाओं के भी केंद्र हैं। ये सत्र माजुली ही नहीं, अपितु पूरे असम के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सत्र असम के धार्मिक, सामाजिक जीवन के मूलाधार हैं, धर्म एवं लोकतंत्र का पाठ पढ़ाने वाले संस्थान हैं। इस विषय में अमूल्य चंद्र बोरा जी ने कहा है कि- "The satras are the dipositories of the large number of valuable religious and cultural documents and articles of great historical value which are being preserved for prosperity"[2] अनेक वर्गों-समूहों तथा जनजातियों में विभक्त असमिया समाज को संयोजित एवं संगठित करने के लिए उन्होंने सत्रों की स्थापना की। सत्र का एक सत्राधिकार होता है जिसके निर्देशन और मार्गदर्शन में शिष्यों को अनेक कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। सत्रों में एक नृत्य प्रणाली चलती है, जिसमें आध्यात्मिक प्रेम को प्रदर्शित करते हुए विष्णु के अवतार कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया जाता है, इस नृत्य को सत्रिय नृत्य कहा जाता है। महाकवि द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव आंदोलन ने असम में अनेक कलाओं को जन्म दिया। इस आंदोलन में जितनी कलाओं का जन्म हुआ, उन सभी में शंकरदेव की मौलिक प्रतिभा का सन्निवेश था। इन कलाओं का प्रशिक्षण सत्रों में दिया जाता था। सत्रों में नृत्य कला के अतिरिक्त गायन, वादन, अभिनय, चित्र, नाट्य तथा हाथ से बनाए जा सकने वाले अनेक उपकरणों का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक सत्र का अपना अलग वैशिष्ट्य इस मायने में है कि विभिन्न सत्र भिन्न-भिन्न कलारूपों के लिए प्रसिद्ध हैं, जैसे हस्तकला, मुखौटा निर्माण-कला, नव-निर्माण कला, वाद्ययंत्रों को बनाना, सत्रीय नृत्य का प्रशिक्षण आदि।

सत्रों में प्रचलित विविध कलाओं में मुखौटा कला एक महत्वपूर्ण कलारूप है। दुनिया के लगभग प्रत्येक समाज और संस्कृति में मुखौटा मनुष्य की अभिव्यक्ति, कल्पना और कला के रूप में उपयोगी रहा है। आदिकाल से ही मुखौटे मनुष्य जीवन की विभिन्न वृत्तियों और कलाओं के माध्यम रहे हैं। मानव स्वभाव में बहुत कुछ ऐसा है जिसे हम अपने चेहरे से व्यक्त नहीं कर पाते। मुखौटा मनुष्य की कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता का सुंदर उदाहरण है। माजुली का सामागुरी सत्र मुखौटा निर्माण कला के लिए प्रसिद्ध है। इस सत्र की स्थापना अहोम राजा स्वर्गदेव चक्रध्वज सिंह की मदद से चक्रपाणि आता ने 1663 ई. में की। इस विषय में अमूल्य चंद्र बोरा जी अपनी पुस्तक 'The rich heritage of island majuli' में कहते हैं "Chakrapani ata laid down the foundation of sri sri chamoguri satra in the year 1,663 near jamani water body- He was a disciple of the great saints sankardeva and madhaba deva- The satra got royal help from theA hom king swargadeu chacradradhar singh in full form."[3] यह सत्र माजुली में सर्वाधिक आकर्षण का केंद्र है। सत्र में मुखौटों के निर्माण का प्रशिक्षण आज भी दिया जा रहा है, ये मुखौटे श्रीमंत शंकरदेव विरचित अंकिया नाटकों के मंचन के दौरान अनिवार्य रूप से प्रयोग किए जाते हैं। वर्तमान समय में माजुली के सबसे प्रसिद्ध शिल्प रूपों में मुखौटा शिल्प है। इन मुखौटों का प्रयोग अंकिया नाटकों के मंचन के दौरान किया जाता है। अंकिया नाटकों के लिए कोई स्थायी रंगमंच नहीं होता है, इन्हें खुले रूप में ही प्रदर्शित किया जाता है। अंकिया नाटकों का प्रचलन सत्रों के भीतर स्थित नामघर या प्रार्थना घरों में होता है। माजुली के लगभग हर सत्र में भाओना (अंकिया नाट) का प्रदर्शन आयोजित करना एक परंपरा है जिसमें मुखौटों का इस्तेमाल अनिवार्य माना जाता है। मुखौटा सत्रिय संस्कृति का भी एक अभिन्न हिस्सा है। परंपरागत रूप से मुखौटे का इस्तेमाल धार्मिक नृत्य और नाटक के लिए किया जाता है। श्रीमंत शंकरदेव द्वारा भक्तों को श्रीमद्भागवत के चरित्रों को बनाने और चित्रित करने के लिए एक माध्यम के रूप में इनकी परिकल्पना की गई थी। विभिन्न जनसमुदायों में बंटे तत्कालीन असमिया समाज को नव-वैष्णव भक्ति की तरफ मोड़ना किंचित कठिन था, इसलिए महाकवि ने अंकिया नाटकों के प्रदर्शन के दौरान पहने जाने के लिए इन मुखौटों का आविष्कार किया। उन्हें पता था कि आम जनमानस को प्रत्यक्ष रूप से नव-वैष्णव आंदोलन में शामिल करने के बजाय नाटकों के माध्यम से आकर्षित करना समुचित होगा। नाटकों में प्रयोग किए जाने वाले इन मुखौटों ने उसे अधिक लोकप्रिय और सजीव बनाया। मुखौटों ने पौराणिक पात्रों का अभिनय करने वालों को सजीव रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। माजुली में रास उत्सव के अवसर पर इन मुखौटों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है। विभिन्न अंकिया नाटकों के प्रदर्शन के अवसर पर इन मुखौटों का प्रयोग होता है। शंकरदेव ने राम और कृष्ण के जीवन पर आधारित कुल 6 नाटकों की रचना की। इन नाटकों में बाली, सुग्रीव, हनुमान, जटायु, रावण, सूर्पनखा, बकासुर जैसे विभिन्न पात्रों का अभिनय कलाकार मुखौटों के माध्यम से करता है। मुखौटों का प्रयोग कलाकार के अभिनय तथा संवाद कौशल में सहायक होता है। रावण, ताड़का, बकासुर, हनुमान जैसे पात्रों की विभिन्न मुद्राओं और भावनाओं का चित्रण इन मुखौटों के माध्यम से अधिक संभव होता है। सामागुरी सत्र के मुखौटे और उनकी प्रसिद्धि के विषय में कहा गया है, "significantly, sri sri natun chamaguri satra is renouned for unique mask making art and rash leela festival- The famous

mask art of natun chamaguri satra has already received both national and international recognition and frame."[4]

माजुली के मुखौटे विभिन्न प्रकार के पौराणिक पात्रों पर बनाए गए हैं, ये मुखौटे नाट्य प्रदर्शनियों में पहने जाते हैं। पुराणों के वे पात्र जिनसे आम जनमानस भावनात्मक रूप से लगाव रखता है और उन्हें अपनी आँखों से फिर से देखना चाहते हैं, उनके लिए ये नाट्य प्रदर्शन मानसिक तुष्टि का कारण बनते हैं। सिर्फ नाटकों के प्रदर्शन के अवसर पर ही नहीं, अपितु माजुली तथा पूरे असम में ये मुखौटे वहाँ के लोकनुष्ठानों और उत्सवों में भी प्रयुक्त होते हैं। शंकरदेव के समय से ही नववैष्णव आंदोलन के सांस्कृतिक संरक्षण में इस कला का विकास हुआ।

मुखौटा बनाने के लिए मुख्य रूप से बांस, बेंत, कपड़े और मिट्टी आदि का उपयोग किया जाता है। पहले मुखौटे लकड़ी, मिट्टी जैसी विभिन्न सामग्रियों से बने होते थे। बाद में इन मुखौटों को बनाने के लिए बांस का इस्तेमाल किया जाने लगा। बांस से बने मुखौटे स्वाभाविक रूप से काफी हल्के हैं। बांस के टुकड़े 4-5 दिनों के लिए पानी के नीचे रखे जाते हैं। पानी में बाँस के टुकड़ों को भिगोने से कीट के हमले को रोका जाता है और बाँस की नलियों को अधिक लचीलापन मिलता है। नियमित अंतराल पर बेंत की पट्टियों के साथ बांस की पट्टियों को बांधा जाता है। इस प्रकार ये मुखौटे भाओना (नृत्य नाटिका) के प्रदर्शन में प्रयुक्त होने लगे। प्राकृतिक रंगों का उपयोग पहले मुखौटों के सौंदर्यीकरण के लिए किया जाता था, लेकिन अब बाजार से कृत्रिम रंगों का उपयोग भी किया जाता है। बाल और मूंछें जूट और पानी की जलकुंभी से बनाई जाती हैं। बेहद सावधानीपूर्वक इन मुखौटों का निर्माण किया जाता है। मुखौटे तीन प्रकार के होते हैं: मुख (mukha)- ये केवल चेहरे के रूप में प्रयोग में आते हैं, लोतोकई मुख (lotokai mukha)-इस प्रकार के मुखौटे, आँखों और होंठों को हिलाने के लिए प्रयोग में आते हैं, बोर अथवा चो मुख (Bor or cho mukha)- ये आकार में बड़े होते हैं और लगभग पूरे शरीर को ढंकते हैं। माजुली के मुखौटों के प्रकार के विषय में- "Rifur zaman कहते हैं There are three types of masks at majuli- These are: mukh mukha, cho mukha, and lotokai mukha- Mukh mukha is worn over the face- Cho mukha is very big in size and covers almost the whole body of a person- Lotokai mukha is akin to cho mukha except its small size."[5]

मुखौटों के निर्माण में 10 से 15 दिन लग जाते हैं। मुखौटे के ढांचे को ढीले-ढाले बाँस और बेंत की पट्टियों के साथ बनाया जाता है, जो चेहरे के आकार में एक साथ जोड़े जाते हैं और फिर चिपचिपी गीली मिट्टी में सूती कपड़े को डुबाकर इसको चिपकाया जाता है, जिसके बाद इसे धूप में सुखाया जाता है। मुखौटा जब आधा सूख जाता है तो मिट्टी और गाय के गोबर के मिश्रण से आँखों और अन्य अंगों को आकार दिया जाता है। कच्चे बांस के टुकड़ों से बने होते हैं। पेड़ों की छाल या जूट का उपयोग बालों के लिए किया जाता है। पूरी तरह सूख जाने से पहले ही बांस के एक तीखे टुकड़े को लेकर मुखौटे की सतह

को चिकना करने के लिए घिसा जाता है, जिसके बाद मुखौटा अपने अंतिम रूप में पहुँचता है जहाँ उसे विभिन्न रंगों से सजाया जाता है।

सामागुरी सत्र के प्रसिद्ध मुखौटा कलाकार डॉ. हेमचंद्र गोस्वामी पिछले कई वर्षों से इस कला का प्रशिक्षण सत्र में शिष्यों और देश-विदेश से आने वाले पर्यटकों को दे रहे हैं। उनका मानना है कि श्रीमंत शंकरदेव ने अपने नाटकों को मंचित करने के दौरान मुखौटों की आवश्यकता को महसूस किया जिसकी वजह से उन्होंने मुखौटा निर्माण की कला का प्रारंभ किया। यह कला परंपरा 500 वर्ष से भी पुरानी है जिसका निर्वहन आज भी होता चला आ रहा है। वर्तमान में रास-उत्सव को माजुली में लगभग 55 स्थानों पर धूम-धाम और उल्लास के साथ मनाया जाता है और इस दौरान मुखौटों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। पिछले 35 वर्षों से हेमचंद्र गोस्वामीजी बड़ी संख्या में छात्रों को यह प्रशिक्षण देते आ रहे कि मंच पर इस्तेमाल होने वाले इन पारंपरिक मुखौटों को कैसे बनाया जाता है? हेमचंद्र गोस्वामी ने बाँस के बोलने वाले मुखौटों का भी निर्माण किया है जो अभिनेताओं को संवाद करने में सहायता पहुँचाते हैं। भारत, फ्रांस, जर्मनी और इजराइल आदि देशों के कई विद्यार्थी यह कला सीखने यहाँ आते हैं। सत्र में मुखौटों को बनाने की कला का प्रशिक्षण बिना किसी पारिश्रमिक के दिया जाता है। इस विषय में-"Rifur zaman कहते हैं In the natun chamaguri village, where the study satra is situated, most of the person practiced mask making as a primary occupation3A mask maker is respected by the people by his ability-till the recent past ,¡ mask maker did not receive any remuneration for his creation for honour and prestige."[6] सत्र द्वारा निःशुल्क रूप से मुखौटों के निर्माण की शिक्षा दी जाती है, हेमचन्द्र गोस्वामी जी का कहना है कि आने वाली पीढ़ियों के लिए यह कला संरक्षित रहे, यही इसका मूल्य है।

माजुली अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और मुखौटों की जीवंत संस्कृति के कारण आज भी आकर्षण का केंद्र है। असम में नव-वैष्णववादी संस्कृति का जन्मस्थान यहीं माना गया। माजुली के सत्रों में मुखौटा-कला का इतिहास श्रीमंत शंकरदेव के नव वैष्णव आंदोलन से बहुत गहराई से जुड़ा हुआ है, शंकरदेव ने कला और संस्कृति सहित विभिन्न क्षेत्रों में नवसृजन किए जो आने वाली कई पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय बना हुआ है।

माजुली के मुखौटे स्वदेशीः कला और संस्कृति के उच्चतम नमूने हैं। ये कला किसी एक दिन की साधना नहीं, बल्कि इसकी पूरी परंपरा रही है, यह गुरु-शिष्य परंपरा से होते हुए आज यहाँ तक पहुँची है। दिनों-दिन इन मुखौटों की मांग विदेशों में बढ़ती जा रही।कलाकारों की माने तो माजुली के मुखौटे ब्रिटिश संग्रहालय में रखे गए हैं जहाँ वे पर्यटकों के आकर्षण के केंद्र बने हुए हैं। इनके द्वारा बनाए गए इन मुखौटों की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए कहा जा सकता है कि इसकी प्रसिद्धि के पीछे इन कलासाधकों की मेहनत, लगन और कला के प्रति समर्पण है। माजुली पिछले लगभग 500 वर्षों से असमिया सभ्यता और संस्कृति की राजधानी है। माजुली के सत्रों में आज भी शिष्य; भक्त बिना किसी लोभ और पुरस्कार की अपेक्षा किए नयी-नयी कलाएँ सीख रहे हैं। ये कलाएँ समाज के लिए उपयोगी तो हैं ही साथ ही, माजुली और शेष भारत के संबंधों की अक्षुण्ण परंपरा को हमारे सामने उपस्थित करती हैं।

आज आवश्यक है कि हम इन कलाओं के महत्व को समझते हुए इनके संरक्षण के लिए प्रयास और सहयोग करें।

संदर्भ ग्रंथ-

1. शंकरदेव एंड हिज टाइम्स, महेश्वर नेओग, एल.बी.एस. पब्लिकेशन गुवाहाटी, द्वितीय संस्करण (2018), पृ. 1

2. द रिच आइसलैंड ऑफ माजुली, अमूल्य चन्द्र बोरा, डिजिटेक प्रिंटर्स, माजुली, प्रथम संस्करण (2017), पृ. 62

3. वही, पृ. 58

4. वही, पृ. 59

5. द ट्रेडिशन ऑफ मास्क्स इन इंडियन कल्चर, अरिफुर जमान, आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण (2015), पृ. 74

6. वही, पृष्ठ-83

-आदित्य कुमार मिश्रा

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली